International Journal of Applied Research 2015; 1(12): 267-269

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(12): 267-269
www.allresearchjournal.com
Received: 19-09-2015
Accepted: 21-10-2015

डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय ढलियारा
कांगडा हि प्र

Correspondence
डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय ढलियारा
कांगडा हि प्र

संस्कृत आचार्य एवं रीतिकालीन लक्षण–ग्रंथ परम्परा

डॉ. शिवदत्त शर्मा

हिन्दी साहित्य से पूर्व संस्कृत साहित्य में लक्षण–ग्रंथों की बडी लम्बी परम्परा रही हैं। संस्कृत आचार्यों ने काव्य सिद्धान्तों का निरूपण उत्कृष्ट रूप से किया है। [1] वैदिक साहित्य से ही संस्कृत लक्षण ग्रन्थों का प्रारम्भ हो गया था इसके अनेक प्रमाण साहित्य में मिलते हैं। सम्पूर्ण साहित्य का पहला लाक्षणिक ग्रंथ किसे स्वीकार किया जाए प्रमाणों के अभाव में भरत मुनि के नाट्यशास्त्र को ही प्रथम लक्षण ग्रंथ स्वीकार किया गया है। यह सत्य है कि भरत मुनि से भी पूर्व भी लक्षण ग्रंथों की रचना अवश्य होती रही है जिसके अनेक प्रमाण साहित्य में उपलब्ध होते हैं। [2] आचार्य नन्दिकेश्वर, शिलालिनकोहल, धूर्तिल, शाण्डिल्य, वात्सय, बादरायण, तम्बरु, आंजनेय, सबंधु आदि के नामों का उल्लेख साहित्य में मिलता है परन्तु किसी का भी स्वतंत्र ग्रंथ प्राप्त नहीं है। अतः भरत मुनि के नाट्यशास्त्र को ही प्रथम लक्षण–ग्रंथ स्वीकार किया गया है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में 36 अध्याय हैं तथा इसमें रस, वृत्त, छन्द, काव्यगुण व दोष, अलंकार, नाटकरूप व भेद आदि पर सविस्तार चर्चा की गई है। वस्तुतः नाट्यशास्त्र की रचना लाक्षणिक ग्रंथ के उद्देश्य से नहीं की गई थी अपितु इसकी रचना मूल रूप से नाट्य–विधा के लिए की गई थी। यह लक्षण–ग्रंथ के रूप में ही स्वीकार किया गया है क्योंकि इसमें दिए गए प्रायः सभी लक्षण एवं मान्यताओं को सभी काव्यरूपों पर लागू किया गया है। भरत मुनि के नाट्य–शास्त्र की रचना प्रथम शताब्दी के आसपास हुई मानी जाती है।

लाक्षणिक ग्रंथों के रचने की परम्परा अगले पांच सौ वर्षों में कुछ मन्द दिखाई देती है क्योंकि इन पांच सौ वर्ष की अवधि में या तो कोई लक्षण ग्रंथ लिखा ही नहीं गया अथवा किन्हीं कारणों से प्रकाश में नहीं आया। ऐंसा लगता है कि यह परम्परा रुकी तो नहीं होगी परन्तु इस अवधि में रची रचनाएं प्रकाश में नहीं आ सकीं, कारण कुछ भी हो सकता है।

छठी शताब्दी में आचार्य भामह ने काव्यामलंकार नामक लक्षण ग्रंथ की रचना की। [3] इस ग्रंथ में छः परिच्छेद हैं और चार सौ के आसपास श्लोक हैं।इस ग्रंथ में अलंकारशास्त्र से सम्बन्धित विषय पर अपने विचार प्रकट किए गए हैं। आचार्य भामह का विचार था कि अलंकार काव्य का अनिवार्य तत्व है तथा इसके बिना काव्य अधूरा है, एक तरह से उन्होंने अलंकार को काव्य का अनिवार्य अंग घोषित किया। अलंकार से सम्बन्धित उनकी मान्यताओं को आज भी सम्मान प्राप्त है। [4]

छठी शताब्दी में ही इसके उपरान्त आचार्य दण्डी ने अपना लक्षण ग्रंथ काव्यादर्श लिखा। इसमें अलंकारों पर विस्तृत चर्चा की गई है। आचार्य दण्डी का मानना है कि काव्य की शोभा बढाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं। अलंकार सम्प्रदाय के प्रभुत्व के कारण आचार्य उद्भट ने भी अलंकार शास्त्र पर एक ग्रंथ लिखा।

आठवी शताब्दी में आचार्य वामन ने रीति सिद्धान्त पर आधारित काव्यालंकार सूत्रवृत्ति नामक लक्षण ग्रंथ की रचना की। आचार्य वामन ने सर्वप्रथम काव्य की आत्मा पर आधारित अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि शब्द और अर्थ यदि काव्य के शरीर हैं तो रीति काव्य की आत्मा है। इस तरह प्रथम बार काव्य की आत्मा के रूप में रीति को घोषित किया गया । [5]

नवमी शताब्दी में आचार्य आनन्द वर्धन ने ध्वन्यालोक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ ध्वनि सिद्धान्त का मूल ग्रंथ है तथा इसमें ध्वनि सिद्धान्त पर आधारित विस्तारपूर्वक चर्चा मिलती है।

दसवीं शताब्दी में आचार्य कुन्तक ने अपने लक्षण ग्रंथ वक्रोक्तिजीवितम् नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें वक्रोक्ति को ही काव्य का महत्व पूर्ण अंग सवीकार किया गयां। उनका मानना था कि काव्य में वक्रोक्ति के द्वारा चमत्कार उन्पन्न होता है तथा उसके बिना काव्य, काव्य नहीं कहला सकतां।

ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने लक्षण ग्रंथ औचित्यविचारचर्चा में औचित्य सिद्धान्त पर चर्चा कीं उन्होंने काव्य में सभी तत्वों का उचित प्रयोग आवश्यक बताया। इसके अतिरिक्त भी काव्यशास्त्र में अनेक आचार्यों ने अपने अपने लक्षण ग्रंथ रचें। आचार्य विश्वानाथ का साहित्य दर्पण

एवं आचार्य मम्मट का काव्यप्रकाश जयदेव का चन्द्रलोक तथा आचार्य जगन्नाथ का रसगंगाधर का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। [6]

प्राकृत एवं अपभ्रंश में लक्षण–ग्रंथ

लक्षण ग्रंथों की परम्परा संस्कृत के बाद भी अनवरत चलती रही। प्राकृत व अपभ्रंश भाषा में भी लक्षण ग्रंथों का निर्माण हुआ, परन्तु लक्षण ग्रंथ की कोटि में इन सबको नहीं रखा जा सकता। केवल कुछ एक ग्रंथ ही लक्षण ग्रंथों की श्रेणी में रखे जा सकतें हैं। जिन्हें लक्षणग्रंथों की कोटि में रखा जा सकता है उनमें सिद्ध शान्ति रत्नाकर, प्राकृत व्याकरण छन्दानुशासन आदि के नाम मुख्य रूप से लिए जा सकते हैं। यह भी सत्य है कि रीतिकालीन लक्षणग्रंथों पर पूर्ववर्ती प्राकृत अथवा अपभ्रश का जरा भी असर दिखाई नहीं देता। रीति कालीन सभी आचार्यों ने केवल संस्कृत आचाय्रे एवं उनके लक्षण ग्रंथों का ही अनुसरण किया है तथा उसी से ही आधार भूत सामग्री ग्रहण की है। कुछ विद्वानों का मानना है कि अपभ्रंश में लक्षण ग्रंथों का निर्माण नहीं हुआ। डॉ भगीरथ मिश्र का मत है कि लक्षण ग्रंथों को रचने का काम अनवरत चलता रहा। डॉ शिवनाथ पाण्डेय ने भी अपभ्रंश की कुछ रचनाओं का उल्लेख किया है। काव्य शास्त्र से सम्बन्धित सामग्री वाले अन्य भी ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। श्री देवसेन मुनि की रचना–माइल्लधवल का दोहा 1000 वि तथा वि 1059 में रचित मुंज के दोहे, एवं सं 1241 में रचित कुमार प्रतिपाल बोध ऐसी ही रचनाएं हैं। [7]

भक्ति कालीन लक्षण ग्रंथ

भक्ति काल विशेषतः भक्ति के लिए ही प्रसिद्ध है परन्तु इस काल में भी कुछ लक्षणग्रंथों की रचना हुई है। सूरदास की प्रसिद्ध रचना साहित्यलहरी लक्षण ग्रंथों मे ही गिनी जाती है। इसके अतिरिक्त कृपाराम की हिम तरंगिनी तथा नन्ददास की रसमंजरी भी प्रमुख लक्षण ग्रंथ हैं।

रीतिकालीन लक्षणग्रंथ

भक्ति कालीन कवियों ने वास्तव में रीतिकालीन आचार्यों के लिए एक तरह से लक्षण ग्रंथ लिखने के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। उनके काव्य में रहस्यवाद, उलटवासियां तथा अभिव्यक्ति का अनूठा ढंग रीतिकालीन आचार्यों के लिए प्रेरणास्त्रोत बना। रीतिकाल में लक्षण ग्रंथ कई तरह के सामने आते हैं। रीति कालीन कवि भी काव्यशास्त्र के तत्वों के चिंतन–मनन एवं विचारविमर्श की आवश्यकता अनुभव करते थे इसी प्रयास में अनेक लक्षण ग्रंथों की रचना हुई। रीतिकालीन आचार्यों ने सीधे रूप मे संस्कृत आचार्यों का ही अनुसरण किया है। रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों को प्रवृत्ति एव सिद्धान्त के आधार पर इन लक्षण ग्रंथों को सुविधा के लिए तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है। [8]

1. अलंकार विषयक लक्षण–ग्रंथ– अलंकार विषयक लक्षण ग्रंथों में जसवन्त सिंह द्वारा रचित भाषा भूषण, कवि भूषण कृत शिवराजभूषण कवि ग्वाल द्वारा लिखा गया ग्रंथ अलंकार भ्रम भंजन एवं मतिराम कृत ललितललाम विशेषतः उल्लेख्य हैं।
2. रस व नायिका भेद विषयक लक्षण–ग्रंथ– आचार्य चिन्तामणि द्वारा लिखी रचना श्रृंगार मंजरी, आचार्य मतिराम कृत रसराज, आचार्य भिखारी दास कृत श्रृंगार निर्णय, आचार्य सोमनाथ कृत श्रृंगारविलास आदि।
3. रस विषयक लक्षणग्रंथ– आचार्य कुलपति मिश्र का रस रहस्य, आचार्य चिन्तामणि कृत रसविलास आचार्य देवकृत रसविलास आचार्य सोमनाथ कृत रसपीयूष निधि, आचार्य भिखारी दास कृत रससारांश आदि।

इसी तरह काव्यांग विवेचन के आधार पर रीति कालीन लक्षण ग्रंथों को दो मुख्य वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1 सर्वांग विवेचन के लक्षण–ग्रंथ– कवि कुल कल्पतरु, शब्द रसायन, रसरहस्य, आदि।

2 विशिष्टांग विवेचन के लक्षणग्रंथ–सुन्दर श्रृंगार, रस किल्लोल, रसिक विलास, रसचन्द्रिका आदि।

विभिन्न आचार्यों ने अनेक लक्षण ग्रंथों की रचना की है, सभी ग्रंथों का विस्तृत वर्णन न करके केवल प्रमुख आचार्यों एवं उनके ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है।

संस्कृत साहित्य में तो आचार्य परम्परा अनवरत रही तथा उनके स्थापित विभिन्न सिद्धान्त आज भी साहित्य में चर्चा का विषय हैं परन्तु उसके बाद हिन्दी साहित्य में समयसमय पर जिन आचार्यों ने लक्षण सिद्धान्त लिखने का उपक्रम किया वे मात्र अनुकरण ही कहा जाएगा, क्योंकि किसी भी आचार्य ने अपना मौलिक सिद्धान्त स्थापित नहीं किया एक तरह से हिन्दी साहित्य में प्रतिपादित लक्षण सिद्धान्त संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित लक्षण सिद्धान्तों का पिष्टपेषण मात्र है। फिर भी कुछ आचार्यों द्वारा किए गए इस दिशा में सिद्धान्त प्रशंस्य हैं।

क. आचार्य कवि केशव दास

आचार्य केशव दास भक्तिकाल और रीतिकाल दोनों कालों के मूर्धन्य विद्वान माने जाते हैं। इन्हें रीतिकालीन काव्यशास्त्र का प्रवर्तक कहा जाता है। इन की दो महत्वपूर्ण रचना, लक्षणग्रंथ के रूप मे उपलब्ध हैं। कविप्रिया तथा रसिकप्रियां। कविप्रिया में अलंकार विवेचन पर सविस्तार चर्चा की गई है। अन्य काव्यांगों पर अधिक चर्चा नहीं है। [9] उन्होंने स्वयं ही अलंकारों का काव्य में कितना महत्व है, स्पष्ट कर दिया है–

जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजहिं, कविता बनिता नित्त।

अलंकारों का वर्णन करते हुए केशव जी ने विभिन्न अलंकारों के लक्षण और उदाहरण हिन्दी में दिए हैं यद्यपि इन्हें संस्कृत का हिन्दी रूपान्तरण कहा जा सकता है फिर भी हिन्दी साहित्य को यह उनकी देन ही कही जाएगी क्योंकि इस से पूर्व ऐसा प्रयास किसी ने नहीं किया था। उनका स्वभावोक्ति अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

जाको जैसो रूप गुण, कहिए ताहि साज।
तासो जनि स्वभाव सब, कहि बरगत कविराज।

ख. आचार्य चिन्तामणि

आचार्य चिन्तामणि को कई विद्वान रीति काव्य का प्रवर्तक मानते हैं। अनेक परवर्ती कवियों एवं आचार्यों ने इनके लक्षणग्रंथों का ही अनुकरण किया है। कविकुल कल्पतरु, पिंगल, श्रृंगारमंजरी, आदि का नाम विशेषतः उल्लेख्य हैं। इनमें कविकुल कल्पतरु की ख्याति अधिक है क्योंकि इसमें पहली बार किसी आचार्य द्वारा हिन्दी में स्पष्ट रूप में काव्य गुण व दोष, शब्द शक्ति आदि पर विचार किया गया है। [10]

ग. कुलपति मिश्र

रस–रहस्य इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है जिस पर पूर्व वर्ती संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश तथा आचार्य विश्वानाथ के प्रसिद्ध ग्रंथ साहित्यदर्पण का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। रसरहस्य के आठ वृत्तान्तों में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु आदि पर पर्याप्त चर्चा उपलब्ध है। इनके लक्षण ग्रंथ का एक उदाहरण देखिए–

एक रूप ही अर्थ बहु, जहां कहं कवि लोय।
नयो रूप लखिए नहि, अनै विकृत है सोय।

घ. देव

देव कवि के प्रमुख लक्षण ग्रंथ हैं–1 भावविलास 2 शब्दरसायन । भावविलास में रस पर चर्चा की गई है। ऐसा माना जाता है कि इस पर भानुदत्त की रसमंजरी, भामह के काव्यालंकार आचार्य दण्डी के काव्यादर्श आदि का प्रभाव है। शब्दरसायन में काव्य–स्वरूप, शब्दशक्ति नायिका–भेद का उल्लेख है। केशव की रसिक प्रिया का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है।

ड. आचार्य भिखारीदास

रस सारांश, काव्य निर्णय, श्रृंगार निर्णय इनके प्रमुख ग्रंथ हैं। रससाराश में रस की सामग्री तथा श्रृंगार निर्णय में नायिकाभेद का विवेचन है। इनके लक्षण ग्रंथों पर भानुदत्त की रसमंजरी रुद्रभट्ट के श्रृंगारस का प्रभाव है।

च. तोष

इनके लिखे तीन ग्रंथ माने जाते हैं परन्तु केवल एक ही ग्रंथ सुधानिधि ही उपलब्ध है। इसपर साहित्य दर्पण भानुदत्त की रसमंजरी केशव की रसिक प्रिया आदि का प्रभाव है।

छ. रसलीन

इनके दो रीतिग्रंथ रसप्रबोध तथा अंगदर्पण हैं। रसप्रबोध में सभी रसों का वर्णन एवं श्रृंगार रस तथा नायिका भेद पर चर्चा की गई है।

ज. पद्माकर

इनके प्रमुख ग्रंथों में जगद्विनोद तथा पद्माभरण मुख्य हैं।जगद् विनोद में कुल छः प्रकरण तथा 731 छंद हैं। इनमें भी परम्परागत नायिका भेद का विवेचन है। पद्माभरण का रचना सन् 1810 में हुई थी तथा हिन्दी साहित्य में लक्षण ग्रथ की दृष्टि से इसका बडा महत्व है। [11]

सारांशतः कहा जा सकता है कि रीति काल में दरबारी संस्कृति का विकास तो हुआ परन्तु इसके साथ ही लक्षण ग्रंथों का भी निर्माण भी हुआ। यह सत्य है कि उनके लक्षण ग्रंथ मूलतः संस्कृत लक्षण ग्रंथों का ही हिन्दी रूपान्तरण थे तथा इनमें मौलिकता का अभाव रहा इसमें सन्देह नहीं। यही कारण रहा कि ये न तो सफल आचार्य बन पाए नही सफल कविता लिख सके। फिर भी हिन्दी साहित्य के लिए लक्षण ग्रंथ लिख कर इन्होंने अमूल्य योगदान अवश्य दिया है।

सन्दर्भ सूचि

1. डॉ कपिल देव द्विवेदी संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास पृ 94
2. आचार्य भरत मुनि भरत नाट्यम पृ112
3. राजवंश सहाय भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास पृ 65
4. राममूर्ती त्रिपाठी भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त पृ78
5. राजवंश सहाय भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास पृ116
6. राजवंश भारतीयकाव्यशास्त्र का इतिहास पृ 56
7. डॉ रामचन्द्र तिवारी भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना पृ89
8. भगीरथ मिश्र हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृ76
9. केशवदास कविप्रिया पृ37
10. आचार्य चिन्तामणि कविकुलकल्पतरु पृ45
11. पद्माकर जगद्विनोद पृ56